International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(3): 06-07

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(3): 06-07
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-03-2021
Accepted: 17-04-2021

डॉ. रेखा अरोड़ा
एसोसिएट प्रोफेसर, मिराण्डा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Corresponding Author:
डॉ. रेखा अरोड़ा
एसोसिएट प्रोफेसर, मिराण्डा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

औपनिषदिक ब्रह्मविद्या और गुरु–शिष्य के आदर्श

डॉ. रेखा अरोड़ा

सारांश
तैत्तिरीयोपनिषद् की गणना प्रमुख 11 उपनिषदों में की गई है। अन्य उपनिषदों की भांति इसका प्रतिपाद्य विषय भी ब्रह्म के स्वरूप का स्पष्टीकरण और ब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग का उद्‌बोधन है। इसकी अन्तिम वल्ली भृगु वल्ली कही जाती है। प्रस्तुत पत्र में भृगुवल्ली में गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुपालन करते हुए वरुण पुत्र भृगु ने ब्रह्म को कैसे पहचाना, इसका वर्णन किया गया है। इसी प्रसंग में गुरु और शिष्य के जो आदर्श सम्मुख आये उनका भी विवेचन किया गया है।

मूल शब्दः औपनिषदिक, ब्रह्मविद्या, आदर्श, उपनिषदों, अनुपालन

प्रस्तावना
उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मविद्या निरूपण है। इस दुरुह ज्ञान को सरलता पूर्वक बोधगम्य बनाने हेतु अनेकशः आख्यानों का आश्रय लिया गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आख्यानशैली के माध्यम से ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन किया गया है।
कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा के तैत्तिरीय आरण्यक में 10 अध्याय हैं। इन दस अध्यायों में सातवाँ, आठवाँ और नवाँ प्रपाठक ही तैत्तिरीयोपनिषद् कहलाता है। यह उपनिषद् तीन वल्लियों में विभक्त है– शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगुवल्ली।
भृगुवल्ली में भृगु के आख्यान का वर्णन है। ब्रह्म की जिज्ञासा रखने वाले भृगु अपने पिता आचार्य वरुण के समीप जाते हैं, और उनसे ब्रह्मज्ञान का बोध करवाने की प्रार्थना करते हैं।[1] यह सुनकर वरुण ने कहते हैं कि अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाणी ये सब ब्रह्म ही हैं।[2]
यहाँ प्रश्न उठता है कि चक्षु, श्रोत्र, मन आदि तो कार्य पदार्थ हैं, वे ब्रह्म कैसे हो सकते हैं, तो महर्षि वरुण ने इनका ब्रह्म के रूप में उपदेश क्यों किया? शंकराचार्य के अनुसार वस्तुतः ये सभी ब्रह्मप्राप्ति के द्वार हैं।[3] अन्नमय शरीर में प्राण रहते हैं और इस शरीर के बिना कोई कार्य संभव नहीं, चक्षु के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन से जीवन–व्यापार सुगमता पूर्वक चलता है। वाणी से शास्त्रज्ञान, उपदेश आदि होता है, श्रोत्र से श्रवण कार्य किया जाता है अतः ब्रह्म ज्ञान के साधन होने के कारण वरुण ने इनका उपदेश किया।
शिष्य रूप में उपस्थित हुए पुत्र को ब्रह्म का लक्षण बताते हुए वे कहते हैं कि जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए प्राणी जीवन धारण करते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं वह ब्रह्म है। उस ब्रह्म को जानो अर्थात् जो उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है, वह ब्रह्म है। यह सुनकर भृगु ने तप किया क्योंकि वे जानते थे कि संसार में समस्त साध्य विषयों की प्राप्ति का साधन तप ही है इसलिए उन्होंने ब्रह्मज्ञान के लिए साधनस्वरूप तप किया। इन्द्रिय–निग्रहात्मक तप सर्वश्रेष्ठ तप है। महाभारतकार कहते हैं–

मनश्चेन्द्रियाणां च ह्येकाग्रयम् परमं तपः।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते।।

महा. शान्तिपर्व, 250/4

भृगु ने इन्द्रिय निग्रह रूप तप करके यह जाना कि अन्न ब्रह्म है क्योंकि ब्रह्म के जो लक्षण बताए गए थे वे सब अन्न में चरितार्थ होते हैं। अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए सब प्राणी अन्न खाकर ही जीवित रहते हैं और अन्त में शरीर छोड़ते समय अन्न में ही लीन हो जाते हैं। इस प्रकार विचार करने पर आपाततः उन्हें अन्न ब्रह्म प्रतीत हुआ परन्तु गहन विचारणा से उन्होंने जाना कि अन्न ब्रह्म नहीं हो सकता क्योंकि अन्न उत्पत्तिविनाशशील है। साथ ही कारण सदा कार्य से पूर्व रहता है,

जिसका अस्तित्व सृष्टि से पहले नहीं है वह जगत् का कारण नहीं हो सकता और जो स्वयं विनाशवान् है वह सृष्टि के विनाश का कारण नहीं हो सकता इसलिए अन्न ब्रह्म नहीं है। यह समझकर वह संशययुक्त होकर पुनः पिता के समीप गए और उनसे ब्रह्मज्ञान देने की प्रार्थना की। तब वरुण ने भृगु को तपस्या के द्वारा ब्रह्म को जानने का आदेश दिया।[4]

ब्रह्मविषयक जिज्ञासा की शान्ति का तप ही साधन है। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए उन्होंने पुनः तप किया और ये जाना कि प्राण ब्रह्म है क्योंकि प्राण प्राणियों की उत्पत्ति का कारण है। प्राण के अधीन ही शरीर की स्थिति है और प्राण निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है। अतः मृत्यु का कारण भी प्राण है, अतः वही ब्रह्म है। यद्यपि आपाततः भृगु को प्राण के ब्रह्म रूप होने की प्रतीति हुई परन्तु शीघ्र ही सूक्ष्म विचार से उन्होंने जाना कि प्राण भी उत्पत्ति विनाशशील होने के कारण ब्रह्म नहीं हो सकता।[5] अपनी अनुभूति से संतुष्ट न होने पर वे पुनः आचार्य वरुण के पास गए और उनसे ब्रह्म का उपदेश देने की प्रार्थना की। आचार्य ने जाना कि ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए भृगु को अभी भी चित्तशुद्धि की अपेक्षा है अतः अन्तःकरण की शुद्धि के साधन तप से ब्रह्म को जानने का उपदेश दिया। पिता के कथनानुसार भृगु ने पुनः तपानुष्ठान किया तप के द्वारा उन्होंने जाना कि प्राण से भी मन श्रेष्ठ है। प्राण से मन की श्रेष्ठता का कारण संभवतः यह है कि सुषुप्ति अवस्था में प्राण सक्रिय रहते हैं लेकिन मन निष्क्रिय हो जाता है। मन के निष्क्रिय हो जाने पर व्यक्ति कुछ नहीं कर पाता। अतः मन में ब्रह्म का लक्षण घटित होता है। प्राणी की उत्पत्ति में भी मन कारण है परन्तु सूक्ष्म चिन्तन से उन्हें ज्ञात हुआ कि मन भी उत्पत्ति और विनाशशील है अतः यह भी ब्रह्म नहीं हो सकता। अपने भावों से संतुष्ट न होकर वे पुनः आचार्य वरुण के पास गए और पिता ने अधिक कुछ न कहते हुए तप से ब्रह्म को जानने का निर्देश दिया क्योंकि तप ही ब्रह्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन है।[6]

भृगु ने तपस्या की और यह अनुभव किया कि मन से भी विज्ञान श्रेष्ठ है। विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तैत्तिरीयोपनिषद् के आनन्दवल्ली में विज्ञान की प्रचुरता वाले जीवात्मा को विज्ञान कहा गया है।[7] मन भी इसी पर आश्रित रहता है। विज्ञान ब्रह्म है क्योंकि इसमें युक्त होने पर ही देह 'प्राणी' कहा जाता है। उसके शरीर में रहने पर प्राणी जीवित और निकल जाने पर 'मृत' हो जाता है। इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति और लय में विज्ञान ही कारण है। आपाततः भृगु को विज्ञान में ब्रह्म की प्रतीति हुई लेकिन पुनः विचार से उन्होंने जाना कि विज्ञानमय जीवात्मा भी पराधीन और असमर्थ है, अतः वह ब्रह्म नहीं हो सकता इसलिए अनुभूति से संतुष्ट न होकर वे पुनः वरुण के पास गए और आचार्य ने उन्हें ब्रह्म प्राप्ति के साधन तप से ही ब्रह्म का साक्षात्कार करने का उपदेश दिया क्योंकि तप से कुछ भी असाध्य नहीं होता।[8]

भृगु ने पिता के आदेश का पालन किया और तप करके यह जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है इस बार वे अपनी अनुभूति से पूर्णतः संतुष्ट थे। अन्न, प्राण आदि में आपाततः ब्रह्म की कल्पना करने पर भी असन्तुष्ट रहने वाले भृगु ने अन्ततः यह ज्ञान प्राप्त किया कि ब्रह्म अतिशय आनन्द से विशिष्ट है। ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, यह वह आनन्द है जो कभी क्षीण नहीं होता। भौतिक पदार्थों से जो आनन्द प्राप्त होता है वह कुछ क्षण, कुछ दिन, कुछ मास, अधिक से अधिक कुछ वर्षों तक ही हमें सुख दे सकता है। समय के साथ–साथउसकी महत्ता न्यून होने लगती है और हम अन्य वस्तुओं में आनन्द खोजते हैं लेकिन ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाला प्राणी सदैव आनन्दित रहता है। वह 'बाह्य जगत मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है।' ऐसा अनुभव करने के कारण वह सदैव ब्रह्म में ही आनन्द का अनुभव करता है।

वस्तुतः अन्न से प्राण सूक्ष्म, प्राण से मन, मन से विज्ञान, विज्ञान से आनन्द सूक्ष्म हैं। व्यवहार में हम देखते भी हैं कि अन्न न खाने पर भी प्राणों का व्यापार कुछ दिन रहता है इसलिए अन्न से श्रेष्ठ प्राण है। प्राण ज्ञान का साधन नहीं, मन है, अतः प्राण के उपरान्त मन का निरूपण किया गया है। मन ज्ञान का साधन है वह ज्ञाता नहीं। ज्ञाता ही कर्ता हो सकता है, इस कारण मन के पश्चात् विज्ञान का कथन किया गया है लेकिन विज्ञानमय जीवात्मा सृष्टि रचने में समर्थ नहीं है, वह अल्पज्ञ है, जो सृष्टि आदि करने पर भी सभी प्रकार से आनन्दमय रहे वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही सृष्टि का कर्ता, भर्ता और संहर्ता होता है।

शंकराचार्य कहते हैं कि इस प्रकार तप से विशुद्ध आत्मा वाले भृगु ने प्राणादि में साकल्येन ब्रह्म के लक्षण को घटित न होता हुआ देखकर धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होकर तपस्या के द्वारा आन्तरिक आनन्द को ब्रह्म जाना। इसलिए ब्रह्मज्ञान के अभिलाषी पुरुषों को परम तप के आश्रय से ब्रह्म ज्ञान की सिद्धि करनी चाहिए यही संपूर्ण प्रकरण का सार है।[9] प्रस्तुत आख्यान से प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था की उत्कृष्ट विशेषताओं का भी दिग्दर्शन होता है।

शिक्षा क्षेत्र में न्याय व्यवस्था विद्यमान थी। पिता आचार्य होने पर भी अपने पुत्र के साथ शिष्यवत् ही व्यवहार करता था। वरूण ने भृगु को लक्ष्य प्राप्ति के लिए कोई सरल अथवा विशिष्ट मार्ग नहीं बताया। एक आदर्श गुरु की भांति उन्हें पुनः पुनः तप के लिए प्रेरित किया और तप के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति का उपदेश दिया।

गुरू और शिष्य दोनों ही अपने आदर्शों के धनी थे। शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति पूर्ण आस्था तथा श्रद्धा के भाव विद्यमान थे। यही कारण है कि वरूण द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हुए भी उन्हें अनेक बार अन्न, प्राण, मन आदि में ब्रह्म का दर्शन न होने पर उन्होंने गुरु के समक्ष कोई तर्क–वितर्क नहीं किया और न ही गुरु की योग्यता पर कोई प्रश्न उठाया अपितु बड़े ही धैर्य के साथ उत्तरोत्तर तप करते रहे। वे एक आदर्श और आज्ञाकारी शिष्य थे जो गुरु वचनों में आस्था रखते थे।

इस प्रसंग से यह भी स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शिष्य ने ज्ञान प्राप्त का अधिकारी अथवा योग्य बनाया जाता था। चाहते तो वरुण प्रथम बार में ही भृगु को ब्रह्म ज्ञान का सरल उपदेश बता सकते थे परन्तु उन्होंने भृगु की योग्यता को पूर्ण विकसित किया। उन्हें पुनः पुनः तप अनुष्ठान करने का उपदेश दिया ताकि भृगु पूर्णरूप से भुगु की चित्तशुद्धि हो जाएँ और जब भृगु पंचम बार तप करते हैं तो उनका चित्त इतना निर्मल हो गया कि वे स्वयमेव ब्रह्म की अनुभूति करने में सक्षम हो जाते हैं।

इस प्रकार विद्यादान से पूर्व छात्र को विद्याग्रहण का अधिकारी बनाया जाता था। इस प्रक्रिया में कितना भी समय और परिश्रम क्यों न लगे, न तो छात्र घबराता था और न ही गुरु इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली आदर्शोन्मुख थी।

सन्दर्भ

1. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली प्रथम अनुवाक भृगुवे, वारुणिः वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति।
2. तैत्तिरीयोपनिषद् – अन्नं प्राणं चक्षु श्रोत्र मनो वाचमिति।
3. उपर्युक्त पर शांकरभाष्य – अन्नं शरीरं तदभ्यन्तरं च प्राणमत्तातरमुपलब्धिसाधनानिचक्षुः श्रोत्रं, मनो वाचमित्येतानि ब्रह्मोपलब्धौ द्वाराव्युक्तवान्।
4. तैत्तिरीयोपनिषद् – द्वितीय अनुवाक – अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तँ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञाशस्व। तपो ब्रह्मेति।
5. तैत्तिरीयोपनिषद् – तृतीय अनुवाक – प्राणाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति। प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।
6. तैत्तिरीयोपनिषद् – चतुर्थ अनुवाक – तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत।
7. तैत्तिरीयोपनिषद् – आनन्दवल्ली
8. महाभारत वनपर्व – 259–17, (क) नासाध्यं तपसः किञ्चित्। (ख) यद्दूरं यद्दुराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।
9. तैत्तिरीयोपनिषद – षष्ठ अनुवाक – तस्माद् ब्रह्मजिज्ञासुना वाह्यान्तः करणसमाधानलक्षणं परमं तपः साधनमनुष्ठेयमिति प्रकरणार्थः।